श्रीमद्भगवद् गीता

जन जन की भाषा में

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

अरावली बुक्स इंटरनेशनल (प्रा.) लिमिटेड
नई दिल्ली–110020

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

ISBN 81-8150-023-7
प्रथम संस्करण : 2004
द्वितीय संस्करण : 2007
© अरावली बुक्स इंटरनेशनल (प्रा.) लिमिटेड : 2004
श्रीमद्भगवद् गीता
मूल्य : स्वाध्याय

With Best Compliments From.....

Ramesh M. Agrawal & Associates

B.A.L.L.M.

Advocates & Legal Consultants – High Court Mumbai

Girish R. Agrawal	*Padma G. Agrawal*
B.S.L.L.B.	*B.SC L.L.B. BCA*
Deepak R. Agrawal (C.A.)	*Dr. Shruti D. Agrawal*
B.com ACA, CWA (Grad)	*B.H.M.S.*

Off.: 1st Floor, Vireshwar Chambers, 21 Janmbhoomi Marg,
Fort Mumbai. 400 001 Ph.: 6633 7546, Fax : 6636 4733

Resi.: 33/A, Kanta Appartment, Pant Nagar, Ghatkopar (E)
Mumbai-400 075 Ph.: 2512 9113, 2513 1532
Mob.: 9821356925
E-Mail: girishlaw@indiatimes.com

प्रकाशक : अरावली बुक्स इंटरनेशनल (प्रा.) लि.
डब्ल्यू–30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस–II
नई दिल्ली–110 020
फोन नं. : 26388830–32, 26389736–38 फैक्स : 26388829
e-mail : aravali@nde.vsnl.net.in
Website : www.aravalibooks.com

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.
डब्ल्यू–30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस–II
नई दिल्ली–110 020

निवेदन

श्रीगुरुभगवान ठाकुर राम सिंह जी (मनोहरपुरिया, सांगानेर, जयपुर) के निम्नलिखित पद इस दास के लिए सदा प्रेरणा के स्रोत रहे हैं :–

तर्क कर सब मिल्लतें, ले मुझ अकेले की पनाह,
फिर मेरा जिम्मा है अर्जुन, तेरा बेड़ा पार है।

त्याग कर संसार को, आते हैं मेरी छाँव में,
डाल देते हैं प्रेम की, डोरी मेरे पाँव में।

हे सखा अर्जुन नहीं, तुमसे कभी न्यारे हुए,
साथ साये की तरह हैं, चक्र को धारे हुए।

प्रेम की डोरी से तुमने, बाँध कर काबू किया,
हाँकते हैं रथ तुम्हारा, प्रेम के मारे हुए।

इन पदों में श्रीगुरुभगवान ने गीता का सारतत्व निचोड़ कर रख दिया है। इन पदों से प्रेरित श्रीमद्भगवद्गीता का सरल हिन्दी भाषा में पदानुवाद रूपी यह कार्य उन्हीं का कृपा–प्रसाद है एवं उन्हीं के श्रीचरणों में सादर समर्पित है।

इस कार्य में जो कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं, वह मेरी अपात्रता के कारण। आशा है, सहृदय पाठक इसे सहन करेंगे। उनके सुझाव rkgupta@yahoo.com पर या फोन नं. 91–11–22718010 पर आमंत्रित हैं। पाठक वैबसाइट www.geocities.com/sufisaints देखने के लिये भी निमंत्रित हैं जिस पर वे सूफी–संतों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

दासानुदास,

राजेन्द्र कुमार गुप्ता

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

पृष्ठभूमि

पृथ्वी बोझिल हुई अधर्म से,
प्रभु ने तब निश्चय ठाना,
करने हेतु दुष्टों का नाश,
युद्ध का बुना ताना–बाना।

महाभारत का हुआ घोष,
सेनाएं आ डटी सामने,
जीवन का मोह त्याग,
रण में मरने और मारने।

एक तरफ असंख्य सेना,
स्वयं श्रीकृष्ण दूसरी ओर,
कौरव पा सेना हर्षित थे,
पाण्डव भी थे भाव–विभोर।

प्रभु बन गए स्वयं सारथी,
अर्जुन को राह दिखाने को,
रण में ना शस्त्र उठाऊंगा,
अपना ये वचन निभाने को।

मद में चूर हुए कौरव,
भूल गए मानवता सारी,
जीतेंगे केवल वे रण में,
अहंकार से बुद्धि हारी।

अन्यायी कुरु सेना में यों तो,
थे उपस्थित अनेक महारथी,
धृतराष्ट्र मगर चिंतित थे,
होगी जीत रण में किसकी।

प्राणप्रिय पुत्रों का मोह,
बेचैन कर गया मन को,
सन्निकट बढ़ रहा विनाश
दीख पड़ा धृतराष्ट्र को।

विचलित चित्त घनी शंकाएं,
मन विषाद से भर आया,
औरों का हक छीना जिसने,
उसने न कभी यश पाया।

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 1

अर्जुन विषाद योग

कुरुक्षेत्र का हाल जानने,
पूछा संजय से धृतराष्ट्र ने,
क्या किया रण में सम्मुख
मेरे और पाण्डु पुत्रों ने ? (1)

दिव्य दृष्टि से भूषित संजय,
करने लगे रण भूमि का वर्णन,
दुर्योधन ने जो कहा द्रोण से,
निरख पाण्डवों का सैन्य संरचन। (2)

हे आचार्य, अपने शिष्य की,
बुद्धिमान द्रोपद धृष्टधुम्न की,
देखिए व्यूहाकार में संरचित,
महान सेना यह पाण्डवों की। (3)

इस पाण्डव सेना में है,
भीम अर्जुन से कई महारथी,
धनुर्धारी, विकट, शूरवीर,
द्रुपद, विराट और सात्यकि। (4)

धृष्टकेतु, चेकितान, काशीराज,
कुन्तिभोज, शैव्य और पुरुजित,
इनके अतिरिक्त और बहुत से,
पराक्रमियों से यह सेना सज्जित। (5)

युधामन्यु, अभिमन्यु, उत्तमौजा,
महारथी पांचों पुत्र द्रोपदी के,
हे द्विजोत्तम, अब सुनिए मुझसे,
सेनापति जो हैं अपनी सेना के। (6–7)

स्वयं आप, पितामह, कर्ण सरीखे,
महारथी हमारी सेना में हैं,
कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण आदि,
रहते विजयी जो रण में हैं। (8)

प्राणों की आहुति को तत्पर,
अन्य अनेक शुरवीर भी हैं,
अनेक शस्त्रों से सज्जित वे,
युद्धकला में प्रवीण भी हैं। (9)

पितामह भीष्म द्वारा संरक्षित,
अपार हमारा यह सैन्य बल है,
लेकिन भीम द्वारा संरक्षित,
सीमित पाण्डवों का सैन्य बल है। (10)

सामरिक महत्व के स्थानों पर,
आप सभी स्थित हो रहें,
और पितामह भीष्म के साथ,
पूर्णतया सब सहयोग करें। (11)

सुन दुर्योधन का यह कथन,
गुरु द्रोण से जो उसने कहा,
भीष्म पितामह ने हर्षित हो,
सिंह–गर्जन सा शंखनाद किया। (12)

शंख, नगाड़े, ढोल, मृदंग,
एक साथ बज उठे वहां,
मिलकर इन सबकी ध्वनि,
स्वर भयंकर हुआ वहां। (13)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

दूसरी ओर पाण्डव सेना में,
श्वेत अश्वों से जुते रथ पर,
प्रभु श्रीकृष्ण और अर्जुन ने,
गुंजाया अपने शंखों का स्वर। (14)

पांचजन्य नामक शंख बजाया,
ऋषिकेश भगवान श्री कृष्ण ने,
अर्जुन ने बजाया देवदत्त, और
पौण्ड्र फूंका महाबली भीम ने। (15)

युधिष्ठर, नकुल, सहदेव ने भी,
अपने–अपने शंख बजाए,
अन्य उपस्थित योद्धाओं ने भी,
संग में अपने शंख बजाए। (16–18)

शंखों के उस तुमुल घोष ने,
गुंजा दिया धरती–आकाश,
कौरव–हृदय विदीर्ण कर गया,
पाण्डवों का वह शंखनाद। (19)

श्री हनुमान चिन्हित ध्वजा वाले,
रथ पर बैठ धनुष धारण कर,
निरख धृतराष्ट्र पुत्रों को अर्जुन,
तब युद्ध के लिए हुआ तत्पर। (20)

बोला अर्जुन मेरे रथ को
ले चलें बीच में, हे अच्युत,
देखूं मैं उन योद्धाओं को,
करने आए जो मुझसे युद्ध। (21–23)

ले चले दोनों सेनाओं के मध्य,
उस रथ को भगवान ऋषिकेश,
फिर बोले अर्जुन से ले अब तू,
कौरव, भीष्म, द्रोणादि को देख। (24–26)

अर्जुन ने देखे निज सम्बन्धी,
दोनों दलों में खड़े हुए,
अनेक गुरुजन, भाई व मित्र,
युद्ध को तत्पर अड़े हुए। (27)

निरख बान्धवों को अर्जुन,
करुणा से आक्रान्त हुआ,
श्री कृष्ण को उन्मुख हो,
उसने तब यह वचन कहा। (28)

हे कृष्ण, युद्ध के लिए खड़ा
यह स्वजन समुदाय देख,
सूखा जा रहा है मेरा मुख,
शिथिल होती जा रही देह। (29)

मुझे कम्पन व रोमांच हो रहा,
त्वचा मेरी सब जलती है,
छिटक रहा गाण्डीव हाथ से,
बुद्धि भ्रमित सी लगती है। (30)

असमर्थ हूं मैं खड़ा रहने में,
सब ओर अमंगल दिखता है,
स्मृति मेरी लोप हो रही,
हे केशव, मेरा मन डिगता है। (31)

नहीं प्राप्त होगा कुछ श्रेय,
करके वध इन स्वजन का,
ना ही प्रलोभन है मुझको,
विजय, राज्य अथवा धन का। (32)

हे गोविन्द, क्या हमें प्रयोजन,
राज्य, सुख अथवा जीवन से,
जिनके लिए चाह इन सबकी,
वे ही सम्मुख खड़े हैं रण में। (33)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

जीवन की आशा को त्याग,
सम्मुख खड़े युद्ध के लिए,
नहीं मार सकता हूं इनको,
मैं अपने प्राणों के भी लिए। (34)

पृथ्वी की तो बात ही क्या,
मिलता जो त्रिभुवन का राज,
नहीं योग्य फिर भी वध इनका,
होगा हमें न इससे कुछ लाभ। (35–36)

हुए लोभ से भ्रष्ट चित्त ये,
उद्यत करने को कुल नाश,
लेकिन ज्ञान हमें है इसका,
नहीं उचित हमको यह पाप। (37–38)

होगा नष्ट सनातन कुलधर्म,
कुल का विनाश हो जाने से,
दूषित हो जाएंगी स्त्रियां भी,
कुल में अधर्म बढ़ जाने से। (39–40)

होती वर्णसंकर की उत्पत्ति,
ऐसे पतन हो जाने से,
पतित हो जाते पितर भी,
कुलधर्म नष्ट हो जाने से। (41–42)

वे करते नित्य नरक में वास,
जो करते कुलधर्म का नाश,
ओह, यह कैसा आश्चर्य महान,
हो रहे लोभवश हम अन्जान। (43–44)

बेहतर इससे मुझ निहत्थे को,
कौरव ही देवें रण में मार,
धनुष त्याग कर बैठ गया,
अर्जुन रथ में यों कर विचार। (45–46)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 2

सांख्य योग

संजय बोला करुणा से तब,
व्याकुल अर्जुन का चित्त हुआ,
आंखों में आंसू भर आए,
शोकमग्न वह वीर हुआ। (1)

श्री मधुसूदन बोले अर्जुन से,
कैसे तुझे यह अज्ञान हुआ,
है अपयश का ही कारण,
विकट समय जो मोह हुआ। (2)

प्रतिकूल यह जीवन गरिमा के,
नहीं उचित अर्जुन यह तझको,
उठ खड़ा हो करने को युद्ध,
मत प्राप्त हो इस दुर्बलता को। (3)

अर्जुन बोला सुनिए भगवन,
कैसे ले सकता मैं इनके प्राण,
द्रोण, भीष्म, ये मेरे पूज्य हैं,
करता निश–दिन जिन्हें प्रणाम। (4)

अधिक श्रेयस्कर मधुकरी है,
गुरुजनों का वध करने से,
रक्त रंग में रंग जाएंगे,
भोग हमारे इनके वध से। (5)

नहीं जानते हम क्या श्रेष्ठ है,
मर जाना या विजय पाना,
ना ही वध करके इनका,
अभीष्ट मुझे यह राज्य पाना। (6)

नहीं समर्थ स्वधर्म पालन में,
छूट रहा है सब धैर्य ध्यान,
मैं आपका शिष्य शरण आपकी,
कृपा कर दीजिए ज्ञान–दान। (7)

नहीं दिखती मुझे कोई राह,
इस महाशोक से बचने की,
ना ही मिट पाएगा सन्ताप,
सम्पूर्ण राज्य मिलने पर भी। (8)

हे गोविन्द, मैं नहीं लडूंगा,
यह कह अर्जुन शान्त हुआ,
भगवन बोले हंसते से तब,
अर्जुन की यह देख दशा। (9–10)

बातें करता विद्वानों सी तू,
पर वे तो करते शोक नहीं,
प्राणी जीवित हो या मृत हो,
पण्डित करते शोक नहीं। (11)

ना कोई काल कभी ऐसा था,
जब मैं न था या तू ना था,
ना काल कोई ऐसा होगा,
जब मैं ना हूंगा, तू ना होगा। (12)

जैसे क्रम से इस देह को,
प्राप्त होती है विभिन्न अवस्था,
वैसे ही मृत्यु होने पर,
प्राप्त होती फिर नूतन काया। (13)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

सुख–दुख और गर्मी–सर्दी,
क्षण भंगुर और अनित हैं,
नहीं शाश्वत इनका अस्तित्व,
इन्द्रियां और विषय जनित हैं। (14)

कर अभ्यास इन द्वन्द्वों का,
अविचलित रह सहन करने का,
ना होता जो व्याकुल इन से,
निश्चय पात्र वह मुक्ति पाने का। (15)

असत्य का नहीं अस्तित्व होता,
और सत्य का नहीं अन्त होता,
यह आत्मा अजर और अमर है,
इसका ना कभी विनाश होता। (16–17)

अज्ञानी जो इसे मरा समझते,
या इसे मारने वाला जानते,
ना मरता यह, ना यह मारता,
ऐसा यथार्थ ज्ञानी जन जानते। (18–19)

यह आत्मा शाश्वत और नित्य है,
प्राकृत देह पर नाशवान है,
बदलती रहती काया पल–पल,
आत्मा लेकिन सदा समान है। (20)

हे पार्थ, जानता आत्मा को जो,
अव्यय, अजन्मा, अविनाशी,
मार सकता या मरवा सकता,
कैसे वह कोई भी प्राणी। (21)

बदल देता है जैसे मनुष्य,
पुराने वस्त्र नये वस्त्र से,
वैसे ही आत्मा बदल देता,
जीर्ण शरीर नयी देह से। (22)

काट इसे नहीं सकता शस्त्र,
अग्नि नहीं जला सकती,
जल नहीं गीला कर सकता,
वायु नहीं सुखा सकती। (23)

यह आत्मा है, हे कुन्तीनन्दन,
सर्वव्यापी, स्थिर, सनातन, नित्य,
अच्छेघ, अक्लेघ, अदाह्य, अशोष्य,
अविनाशी, अव्यक्त और अचिन्त्य। (24–25)

नहीं शोक का कोई कारण,
यदि तू चाहे ऐसा भी माने,
इस आत्मा को नित्य जन्मने,
और नित्य मरण वाला माने। (26)

यह जीवन मृत्यु तक चलता,
जन्म लेता वह निश्चय मरता,
जो मरता फिर जीवन पाता,
भला शोक क्यों अर्जुन करता। (27)

निरन्तर चलता रहता यह चक्र,
देह के साथ प्राणी होते व्यक्त,
जन्म से पहले, मृत्यु के बाद,
सभी प्राणी पर रहते अव्यक्त। (28)

कोई आत्मा को देखता चकित हो,
कोई साश्चर्य इसका वर्णन करता,
कोई इसे नहीं जान पाता कभी,
कोई साश्चर्य इसका श्रवण करता। (29)

हे अर्जुन, यह आत्मा अमर है,
भला शोक का क्या कारण है,
कर तू क्षत्रिय धर्म का पालन,
धर्ममय युद्ध कल्याण साधन है। (30–31)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

हे पार्थ, सुखी वे क्षत्रिय हैं,
मिला जिन्हें धर्मयुद्ध का अवसर,
खुले स्वर्ग का द्वार सरीखा,
स्वधर्म पालन का यह अवसर। (32)

इस पर भी जो तू ना लड़ेगा,
होगा अपयश का ही भागी,
स्वधर्म पालन में प्रमाद करने से,
कीर्ति तेरी सब होगी माटी। (33–34)

सब कायर तुझको समझेंगे,
बिना लड़े जो हार गया,
शत्रु तेरा उपहास करेंगे,
मानेंगे भय से भाग गया। (35)

बहुत बड़ा यह दुख होगा,
अपमान ना कोई बढ़कर होगा,
हे अर्जुन, धैर्य रखना होगा,
तुझे युद्ध यह करना होगा। (36)

यदि वीर गति तू पाता है,
पाएगा तू स्वर्ग का राज्य,
यदि विजय तुझे मिलती है,
पाएगा पृथ्वी का साम्राज्य। (37)

दोनों स्थितियां सुखकर होंगी,
दृढ़ता से जो कर्म करेगा,
निष्काम भाव से यदि लड़ेगा,
नहीं पाप से कलुषित होगा। (38)

बोले भगवन अब तक मैंने,
तेरे लिये सांख्य योग कहा,
निष्काम कर्म जिससे करते,
सुन वर्णन उस बुद्धियोग का। (39)

हे पार्थ, युक्त हो बुद्धियोग से,
पाएगा मुक्ति कर्म बन्धन से,
नष्ट हो जाता महान भय भी,
बुद्धियोग में अल्प साधन से। (40)

होते हैं स्थिर बुद्धि से युक्त,
बुद्धियोग पथ के अनुगामी,
अस्थिर मति वालों की लेकिन,
बुद्धि शाखाओं में बंट जाती। (41)

स्वर्ग और भोगों के दाता,
सकाम कर्मों का जहां विधान है,
वेद के उन आलंकारिक वचनों में,
अल्पज्ञों का बहुत ध्यान है। (42–43)

विषयों में आसक्ति के वश,
नहीं मानते इससे कुछ अच्छा,
हो रहे ऐसे वे सम्मोहित,
प्रेम चित्त में नहीं उपजता। (44)

वेद मुख्य रूप से करने वाले,
प्राकृत गुणों का ही विषय,
कर उल्लंघन इन गुणों का,
अर्जुन पा गुणों पर विजय।

सुख–दुख सर्दी और गर्मी,
हानि–लाभ, जीवन या मरण,
हो मुक्त इन सब द्वन्द्वों से,
हे अर्जुन, स्वरूपनिष्ठ बन। (45)

पूर्ण हो जाते सभी प्रयोजन,
ज्यों बड़ी जलराशि से, छोटी के,
वैसे ही सध जाते प्रयोजन,
वेदों का आन्तरिक मर्म जान के। (46)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

नहीं अधिकार कर्मफल पे तुझको,
अधिकार मगर है कर्म करने में,
ना हो कभी कर्मफल का इच्छुक,
ना आसक्त हो कर्म न करने में। (47)

हे अर्जुन, हो योग में स्थित,
रख समभाव सिद्धि–असिद्धि में,
आसक्ति को त्याग मन से,
नियत हो बस कर्म करने में। (48)

हे धनंजय, वे तो दीन हैं,
जिन्हें इच्छा फल पाने की,
हो मुक्त सकाम कर्मों से,
ले शरण तू बुद्धियोग की। (49)

भगवद् भक्ति जो करता है,
पाप–पुण्य से मुक्ति पाता,
यही महान कर्म कौशल है,
जो इस भक्ति को पाता। (50)

जो भगवन शरण लेते हैं,
जन्म मरण से मुक्ति पाते,
कर्मफल त्याग दुखों से परे,
परमपद वे सहज पा जाते। (51)

जब पार करेगी तेरी बुद्धि,
मोह रूपी सघन दलदल को,
सुनने योग्य व सुने हुए से,
होगा प्राप्त तू वैराग्य को। (52)

चंचलता से रहित होकर जब,
सकाम कर्मों का त्याग करेगा,
स्वरूप समाधि में स्थित हो,
दिव्य बुद्धियोग तू प्राप्त करेगा। (53)

पूछा अर्जुन ने हे प्रभु, बतायें,
क्या लक्षण स्थितप्रज्ञ पुरुषों के,
क्या बोलते वे, क्या भाषा उनकी,
क्या विशेषता आचरण में उनके। (54)

बोले भगवन जीव मन से,
त्याग देता जब विषयवासना,
सदा आत्मा में रहता संतुष्ट,
तब यह स्थितप्रज्ञ कहलाता। (55)

जो ना दुखी होता दुखों से,
स्पृहाशुन्य जो सुख में रहता,
आसक्ति, क्रोध, भय से मुक्त,
स्थितप्रज्ञ जग उस को कहता। (56)

स्नेह रहित हुआ सब ओर से,
शुभ प्राप्ति में ना हर्षित होता,
वह पूर्ण ज्ञान में निष्ठ जिसे,
अशुभ प्राप्ति में ना शोक होता। (57)

वह यथार्थ में परम ज्ञानी है,
जिसने विषयों का त्याग किया,
भोगों से आसक्ति मिट जाती,
जिसने बुद्धियोग रसपान किया। (58–59)

हे अर्जुन, विषय भोग में लिप्त,
इन्द्रियां अत्यन्त वेगवती हैं,
विवेकी पुरुष के मन को भी,
यह वश में कर हर लेती हैं। (60)

इन्द्रियों का संयम कर जो,
भक्ति के परायण हो जाता,
एकाग्र करता बुद्धि को मुझमें,
स्थिर बुद्धि पुरुष कहलाता। (61)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

हो जाती है उनमें आसक्ति,
विषयों का चिन्तन करने से,
आसक्ति से काम, काम से क्रोध
फिर अविचार व मोह क्रम से। (62)

मोह स्मृति भ्रमित कर देता,
स्मृति भ्रम बुद्धि को हर लेता,
इस प्रकार क्रम से विनाश,
संसार कूप में पतन कर देता। (63)

लेकिन संयम का कर अभ्यास,
इन्द्रियां वश में जो कर लेता,
राग द्वेष से मुक्ति पा कर,
प्रभु कृपा वह प्राप्त कर लेता। (64)

प्रसन्न चित्त ऐसे व्यक्ति का
सभी दुख दूर हो जाता,
लेकिन प्रभु कृपा बिन चित्त,
वश में नहीं कभी हो पाता। (65)

जब तक चित्त ना होता वश में,
बुद्धि स्थिर नहीं हो पाती,
सुख उसको कैसे मिल सकता
जिसे शान्ति नहीं मिल पाती। (66)

जलगामी नौका को ज्यों,
प्रचण्ड वायु हर लेती है,
उसी तरह एक इन्द्रिय भी,
मन द्वारा बुद्धि हर लेती है। (67)

इसलिए हे महाबाहु अर्जुन,
उसकी बुद्धि ही स्थिर है,
विषयों से हटा इन्द्रिया जिसने,
अपने वश में कर ली हैं। (68)

आत्म संयमी उसमें जागता,
जो सब जीवों की रात्रि है,
सब प्राणी पर जागते जिसमें,
वह तत्वज्ञों की रात्रि है। (69)

जो पुरुष विचलित नहीं होता,
कामनाओं के अविच्छिन्न प्रवाह से,
सुख शान्ति वही पा सकता है,
नहीं साध्य यह किसी और तरह से। (70)

सम्पूर्ण रूप से जिसने त्यागी,
अपनी सभी इच्छा—कामना,
अहंकार, इच्छा, ममता रहित,
संभव उसे ही शान्ति पाना। (71)

नहीं फिर वह होता मोहित,
पाकर इस दिव्य अवस्था को,
सुख शान्ति से जीवन जीकर,
पा जाता वह भगवद् धाम को। (72)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 3

कर्मयोग

बोला अर्जुन यदि श्रेष्ठ है,
बुद्धियोग सकाम कर्म से,
क्यों कहते हैं केशव मुझको,
युद्ध हेतु कौरव सेना से। (1)

हो रही है मेरी बुद्धि मोहित,
आपके अनिश्चित उपदेश से,
कृपा कर कहिए वह साधन,
मेरा कल्याण हो सके जिससे। (2)

भगवन बोले दो प्रकार की,
निष्ठा वाले पुरुष होते हैं,
कुछ सांख्य में प्रवृत्त हो जाते,
कुछ भक्ति की शरण होते हैं। (3)

कर्म बन्धन से ना मुक्ति होती,
केवल कर्म नहीं करने से,
ना ही प्राप्त होती कृतार्थता,
केवल संन्यास ग्रहण करने से। (4)

क्षणमात्र भी नहीं रह सकता,
कोई प्राणी बिना कर्म किए,
प्राकृत गुणों से प्रेरित प्राणी,
करते कर्म सब परवश हुए। (5)

दमन कर कर्मेन्द्रियों का पर,
मन से विषय चिन्तन करते,
अपने को भ्रम में डाले हैं,
मिथ्या आचरण ही वे करते। (6)

मन से कर इन्द्रियाँ वश में,
अनासक्त भाव से करते कर्म,
अति श्रेष्ठ निश्चय ही हैं वे,
भक्ति भावित जो करते कर्म। (7)

नहीं निर्वाह होगा, हे अर्जुन,
खाली हाथ बैठे रहने से,
कर अपने कर्त्तव्य का पालन,
नहीं लाभ कर्महीन बनने से। (8)

अनिवार्य यज्ञार्थ करना है कर्म,
वरना बन्धन कारक होगा,
अनासक्त भाव से किया कर्म,
सर्वथा मुक्ति कारक होगा। (9)

रचकर प्रजा को यज्ञ सहित,
प्राचीन काल में प्रजापति ने,
कहा सुख भोग करो यज्ञ से,
वांछित फल देगा यज्ञ तुम्हें। (10)

होकर यज्ञो से प्रसन्न देवता,
तुमको भी वे धन्य करेंगे,
एक–दूजे का यों पोषण कर,
श्रेय को सब प्राप्त करेंगे। (11)

पूर्ण करते सभी आवश्यकता,
यज्ञों से हो प्रसन्न देवता,
वह चोर है जो भोगों को,
बिना पूनार्पण किए भोगता। (12)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

हो जाते हैं वे पाप मुक्त,
जो यज्ञ शेषान्न ही खाते,
इन्द्रिय तृप्ति में ही तत्पर,
वे तो केवल पाप ही खाते। (13)

जीवन धारण होता अन्न से,
अन्न उत्पन्न होता वर्षा से,
वर्षा लेकिन होती यज्ञ से,
यज्ञ प्रकट होता स्वधर्म से। (14)

स्वधर्म कर्म वर्णित वेदों में,
प्रकटे जो परब्रह्म से हैं,
इसलिए सर्वव्यापी परब्रह्म,
नित्य प्रतिष्ठित यज्ञ में हैं। (15)

नहीं करता जो अनुसरण,
वेद की इस व्यवस्था का,
रहता लिप्त इन्द्रिय तृप्ति में,
वह पापी व्यर्थ ही जीता। (16)

लेकिन आत्म प्रकाश से युक्त,
आत्मा में जो आनन्दित रहता,
पूर्ण संतुष्ट सदा आत्मा में,
कर्तव्य शेष ना उसे रहता। (17)

नहीं स्वार्थ स्वधर्म आचरण में,
ना ही स्वार्थ कर्म न करने में,
ऐसे स्वरूप ज्ञानी पुरुषों का,
नहीं आश्रय किसी अन्य प्राणी में। (18)

समझना चाहिए कर्म को कर्तव्य,
इसलिए अनासक्त भावना से,
प्राप्त कराता यह परम लक्ष्य,
मुक्त हो फल की चाहना से। (19)

प्राप्त हुए पहले भी संसिद्धि को,
जनक आदि कर्म के द्वारा,
आवश्यक है लोक शिक्षा हेतु भी,
कर्त्तव्य पालन कर्म के द्वारा। (20)

होता प्रमाण जन साधारण को,
महापुरुषों का आचरण सर्वदा,
सम्पूर्ण विश्व करता अनुसरण,
आदर्श की वे करते स्थापना। (21)

हे पार्थ, नहीं है त्रिभुवन में,
कोई भी कर्त्तव्य शेष मुझे,
ना अभाव, ना ही आवश्यकता,
फिर भी कर्म में रत हूं मैं। (22)

यदि ना कर्म करूं मैं तो,
सब मेरा अनुगमन करेंगे,
हूंगा वर्णसंकर का कारण,
सब लोक नष्ट हो जाएंगे। (23–24)

जैसे अज्ञानी हो आसक्त,
फल के लिए करते हैं कर्म,
वैसे ही ज्ञानी पुरुष करें,
अनासक्त भाव से सब कर्म। (25)

ज्ञानी पर सकाम कर्मियों की,
बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करें,
लेकिन अपने आचरण से उन्हें,
भक्तिमय कर्मों में प्रेरित करें। (26)

प्राकृत गुणों द्वारा सम्पादित,
होते हैं सब कर्म जीवों के,
पर अहंकार वश मोहित प्राणी,
मानते स्वयं को कर्ता उनके। (27)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

भक्तिमय व सकाम कर्म में,
जो प्राणी भेद कर पाता,
वासना से परे तत्त्वज्ञानी वह,
नहीं लिप्त फिर उनमें होता। (28)

होकर गुणों से मोहित प्राणी,
प्राकृत क्रियाओं में आसक्त होते,
ना करें पर उनको विचलित,
ज्ञानी जन जो यह भेद जानते। (29)

सम्पूर्ण कर्म कर मुझमें समर्पित,
हे अर्जुन, हो आत्म ज्ञान से युक्त,
कर युद्ध तू निष्काम भाव से,
ममता व आलस्य से होकर मुक्त। (30)

हो जाते कर्म बंधन से मुक्त,
जो इस शिक्षा पर चलते,
अज्ञानी, भ्रान्त और भ्रष्ट वे,
जो इसका उल्लंघन करते। (31–32)

अपनी प्रकृति के अनुसार,
ज्ञानी भी कर्म करते हैं,
प्रकृति के वशीभूत प्राणी,
कैसे निग्रह कर सकते हैं। (33)

विघ्न है स्वरूप साक्षात्कार में,
इन्द्रियां और विषय दोनों ही,
चाहिए किसी भी प्राणी को,
अतः इनके वश में होना नहीं। (34)

कल्याणकारी स्वधर्म आचरण,
परधर्म हमेशा होता भयकारी,
उत्तम स्वधर्म में प्राण त्यागना,
दोष उसमें कुछ होने पर भी। (35)

पूछा अर्जुन ने तब श्रीकृष्ण से,
फिर कौन उसे प्रेरित करता,
इच्छा न होने पर भी क्यों,
पाप कर्म में वह प्रवृत्त होता। (36)

रजोगुण से उत्पन्न काम ही,
इसका कारण है बोले भगवन,
सदा अतृप्त महापापी शत्रु ये,
करता फिर क्रोध रूप धारण। (37)

धुएं से अग्नि, धूल से दर्पण,
जेर से ज्यों गर्भ ढका रहता,
इसी प्रकार यह जीवात्मा भी,
काम आवरण से ढका रहता। (38)

इस प्रकार प्राणी का ज्ञान,
मोहित है इस नित्य शत्रु से,
सदा अतृप्त प्रचण्ड अग्नि सा,
बसता इन्द्रियों, मन, बुद्धि में। (39–40)

इसलिए पहले वश में कर,
हे अर्जुन, अपनी इन्द्रियों को,
मार डाल फिर इस महापापी,
ज्ञान विज्ञान विनाशक शत्रु को। (41)

जड़ प्रकृति से श्रेष्ठ कर्मेन्द्रियां,
पर मन श्रेष्ठ इन्द्रियों से है,
बुद्धि है मन से भी बेहतर,
और आत्मा श्रेष्ठ इन सबसे है। (42)

इस प्रकार हे महाबाहु, अपने
दिव्य आत्म स्वरूप को जान,
बुद्धि द्वारा चित्त कर वश में,
कर कामरूपी शत्रु का निदान। (43)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 4

ज्ञान कर्म संन्यास योग

भगवन बोले यह योग पहले,
कहा था मैंने विवस्वान को,
विवस्वान ने कहा मनु को,
और मनु ने इसे इक्ष्वाकु को। (1)

पहुंचा परम्परा से ऐसे,
राजर्षियों में यह विज्ञान,
कालक्रम से खण्डित होकर,
लुप्त हो गया यह विज्ञान। (2)

कहा वही प्राचीन योग तुझे,
तू मेरा भक्त और सखा है,
इस विज्ञान का दिव्य रहस्य,
भलीभांति तू समझ सकता है। (3)

अर्जुन बोला विवस्वान का,
जन्म आपसे अति पूर्व हुआ,
विस्मित हूं कैसे उन्हें आपने,
इस ज्ञान का उपदेश किया। (4)

भगवन बोले तेरे और मेरे,
हो चुके अनेक जन्म व्यतीत,
मुझे स्मृति है उन सबकी,
लेकिन तू भूल गया अतीत। (5)

मैं अजन्मा, ईश्वर अविनाशी,
युग–युग में अवतरण करता,
होती जब जहां धर्म की हानि,
प्रकट वहां अपने को करता। (6–7)

दुष्टों का करने विनाश,
और अपने भक्तों का उद्धार,
पुनः धर्म स्थापित करने,
युग–युग लेता मैं अवतार। (8)

दिव्य मेरा जन्म और कर्म,
जिसको है यह यथार्थ ज्ञान,
फिर वह जन्म नहीं लेता,
पा जाता मेरा दिव्य धाम। (9)

आसक्ति भय, क्रोध मुक्त,
होकर पवित्र अनेक जन,
पा गए मेरे दिव्य प्रेम को,
लेकर मेरी अनन्य शरण। (10)

फल देता हूं मैं वैसा ही,
जिस भाव से जो शरण लेता,
हे अर्जुन, सब मनुष्य मात्र,
मेरा ही पथ अनुगमन करता। (11)

मिलता है अतिशीघ्र परिणाम,
सकाम कर्मों का इस जग में,
अतः फल पाने हेतु पूजते,
मानव देवताओं को यग में। (12)

गुण और कर्म के अनुसार,
चारों वर्ण रचे मैंने ही,
लेकिन मुझे जान अकर्ता,
यद्यपि कर्ता होने पर भी। (13)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

नहीं कर्मफल की मुझे चाहना,
अतः कर्म नहीं मुझे बांधते,
जानते हैं जो इस सत्य को,
उनको भी कर्म नहीं बांधते। (14)

किया है मुमुक्ष पुरुषों ने कर्म,
पूर्व में यह तत्त्व जानकर,
तू भी कर कर्तव्य का पालन,
बुद्धियोग से युक्त हो कर। (15)

क्या है कर्म, क्या अकर्म है,
हो जाते बुद्धिमान भी मोहित से,
करता हूं, कर्म तत्व का वर्णन,
मुक्त हो जाएगा तू जान जिसे। (16)

अति गहन है कर्म का तत्व,
जान इसे तू भली प्रकार से,
अकर्म और विकर्म का स्वरूप,
जान इसे भी भली प्रकार से। (17)

कर्म अकर्म में, अकर्म कर्म में,
जो देखता है वह बुद्धिमान है,
मुक्त है वह प्रवृत्त होकर भी,
कर्म तत्व का जिसे ज्ञान है। (18)

जिसके कर्म कामना रहित हों,
वह ज्ञानी समझा जाता है,
दग्ध हो जाते सभी कर्मफल,
ज्ञानाग्नि द्वारा, कहा जाता है। (19)

नित्य तृप्त, स्वतंत्र है वह,
चाह नहीं जिसे फल की,
करता नहीं सकाम कर्म वह,
सब कर्म करता हुआ भी। (20)

वश में कर मन और बुद्धि,
त्याग कर भाव स्वामीपन का,
करता कर्म प्राण रक्षा निमित्त,
नहीं वह होता भागी पाप का। (21)

जो मिल जाए उसमें संतुष्ट,
स्थिर बुद्धि, द्वन्द्वों से मुक्त,
सिद्धि–असिद्धि समान जिसे,
वह सवर्था बन्धन से मुक्त। (22)

प्राकृत गुणों में अनासक्त,
रहता पूर्ण ज्ञान में लीन,
सब कर्म हो जाते उसके,
अप्राकृत तत्व में विलीन। (23)

ब्रह्ममय क्रियाओं के जो परायण,
जिसके लिए सब कुछ ब्रह्ममय,
ब्रह्म ही अग्नि, ब्रह्म ही आहुति,
निश्चित ब्रह्म से उसका समन्वय। (24)

करते देवताओं की उपासना,
कुछ ज्ञानी नाना यज्ञों से,
और कुछ ज्ञानी ब्रह्माग्नि में,
अर्पित करते यज्ञ–यज्ञ से। (25)

उनमें से कुछ यजन करते हैं,
क्रियाओं का संयम रूपी अग्नि में,
और कुछ अन्य हवन करते हैं,
विषयों का इन्द्रिय रूपी अग्नि में। (26)

स्वरूप साक्षात्कार जो करना चाहते,
मन व इन्द्रियों का संयम करते,
सब इन्द्रिय व प्राण क्रियाओं का,
संयम रूपी अग्नि में यजन करते। (27)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अन्य कुछ द्रव्य यजन कर,
अष्टांग योग का करते अभ्यास,
कुछ ज्ञान प्राप्त करने हेतु,
वेदाध्ययन का करते हैं अभ्यास। (28)

कुछ समाधि पाने को रोकते,
अपान प्राण में, प्राण अपान में,
कुछ संयमित भोजन के द्वारा,
करते प्राण का हवन प्राण में। (29)

यज्ञ द्वारा ये सभी यज्ञविद,
पापकर्मों से मुक्त हो जाते,
यज्ञ प्रसाद अमृत पान कर,
परम धाम को वे पा जाते। (30)

नहीं सुखकारी यह जीवन भी,
जो न करते कर्म यज्ञ रूपी,
हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन उनका फिर,
होगा कैसे परलोक सुखी। (31)

वेदों में वर्णित इन यज्ञों को,
हे अर्जुन, तू कर्मजन्य जान,
पाएगा मुक्ति भवसागर से,
इस प्रकार यज्ञ तत्व को जान। (32)

होता है श्रेष्ठ, हे अर्जुन,
ज्ञानयज्ञ द्रव्यमय यज्ञ से,
प्राप्त होते पर्यवसान को,
कर्म ज्ञान में पूर्ण रूप से। (33)

तत्त्व ज्ञान मिलेगा सेवा से,
सद्गुरु के शरणागत होकर,
वे तत्त्वज्ञ आत्मज्ञानी पुरुष,
देंगे ज्ञान तुझे दिक्षित कर। (34)

ज्ञानोदय यह होने पर,
नहीं तू होगा फिर मोहित,
देखेगा जीव पूर्ण रूप से,
मुझ परमात्मा में स्थित। (35)

चाहे तू हो, हे अर्जुन,
सर्वाधिक पापी औरों से,
ज्ञान रूपी तरणी द्वारा,
तर जाएगा भवसागर से। (36)

भस्म कर देती जिस प्रकार,
प्रज्जवलित अग्नि ईंधन को,
जला डालती ज्ञानाग्नि वैसे,
प्राकृत कर्मों के बन्धन को। (37)

नहीं उदात्त व पावन कुछ,
ज्ञान के समान इस जग में,
सम्पूर्ण योग का परिपक्व फल,
प्रकट होता यह अन्तर में। (38)

श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, ज्ञानलीन,
परम शान्ति को पा जाता,
संशय युक्त अज्ञानी लेकिन,
पातित हो कष्ट ही पाता। (39–40)

नहीं बंधता वह कर्मों से,
जिसने संशयों का नाश किया,
श्री भगवान को कर अर्पण,
सब कर्मफल का त्याग किया। (41)

ज्ञान रूपी शस्त्र से अर्जुन,
कर विनाश इस संशय का,
फिर योग में स्थित हो तू,
उठ युद्ध हेतु तत्पर हो जा। (42)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 5

कर्म संन्यास योग

अर्जुन बोला, पहले कर्म संन्यास,
फिर प्रशंसा करते कर्मयोग की,
कृपापूर्वक निश्चित कर कहिए,
उनमें से जो हो कल्याणकारी। (1)

भगवन बोले दोनों ही पथ,
निश्चित रूप से कल्याणकारी हैं,
फिर भी कर्म संन्यास करने से,
भक्ति भावित कर्म लाभकारी हैं। (2)

जिसे ना इच्छा कर्मफल की,
ना कर्मफल से हो द्वेष जिसे,
निश्चित ही वह निर्द्वन्द पुरुष,
पा जाता मुक्ति भव बन्धन से। (3)

केवल अज्ञानी ही कर्मयोग को,
कहते भिन्न हैं सांख्य योग से,
करता जो एक का भी पालन,
निश्चय फल पाता दोनों के। (4)

जो सांख्य योग द्वारा प्राप्य है,
भक्ति से वह सुलभ हो जाता,
कर्मयोग और सांख्य योग जो,
एक देखता वह यथार्थ देखता। (5)

भक्ति बिना लेकिन दुर्लभ है,
प्राप्त होना संन्यास को,
भक्ति द्वारा भक्त शीघ्र ही,
पा जाता है भगवान को। (6)

नहीं बंधता वह कभी कर्म से,
जीवों के प्रति जो दयामय है,
विशुद्धात्मा आत्मसंयमी पुरुष,
नित्य रहता जो भक्तिमय है। (7)

बुद्धियोग से युक्त पुरुष,
मानता यही अपने अन्तर में,
विषयों में प्रवृत्त होती इन्द्रियां,
अकर्ता ही है वह यथार्थ में। (8–9)

समर्पित कर सब कर्म ब्रह्म में,
आसक्ति त्याग जो कर्म करता,
जल में कमल पत्र के समान,
नहीं पाप से वह कभी बंधता। (10)

अनासक्त भाव से योगी भी,
आत्मशुद्धि हेतु कर्म करते हैं,
कामना होती जिन्हें फल की,
कर्मफल से केवल वे बंधते हैं। (11–12)

मन से त्याग सम्पूर्ण कर्म,
आत्म संयमी सुख से रहता,
इस प्रकार देहबद्ध जीवात्मा,
अलिप्त हो सुख से रहता। (13)

ना करता यह कर्म में प्रवृत्त,
ना कर्म या फल को रचता,
प्रकृति के गुणों के कार्य ये,
नहीं करता इन्हें जीवात्मा। (14)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

नहीं ग्रहण करते परमेश्वर,
किसी के पाप या पुण्य को,
अज्ञान से आच्छन्न जीव,
यों प्राप्त हो रहा मोह को। (15)

नष्ट हो जाता किन्तु जब,
ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण अज्ञान,
सम्पूर्ण तत्त्व प्रकट होता,
ज्यों सूर्य होता प्रकाशमान। (16)

एकाग्र कर बुद्धि, चित्त, निष्ठा,
जीव जब होता भगवत परायण,
शुद्ध हो पाप और संशय से,
मुक्ति के पथ पर करता गमन। (17)

ज्ञानी जन होते समदर्शी,
नहीं भेद जिनकी नजरों में,
करते ब्रह्म का ही दर्शन,
गौ, कुत्ते, ब्राह्मण, शूद्र में। (18)

जीत लिया जिसने द्वन्दों को,
चित्त जिसका समता में स्थित,
दोष रहित ब्रह्म समान वह,
निःसन्देह सदा ब्रह्म में स्थित। (19)

हर्षित ना जो प्रिय को पाकर,
ना उद्विग्न हो अप्रिय प्राप्ति में,
मोह रहित स्थिर बुद्धि ज्ञानी,
नित्य स्थित वह ब्रह्म तत्त्व में। (20)

अनासक्त हो बाहरी सुखों में,
आत्मा में सुख करता अनुभव,
एकाग्र हो श्री भगवान में वह,
अन्नत सुख का करता अनुभव। (21)

इन्द्रियों व विषयों का भोग,
केवल दुख का ही दाता,
इनका आदि और अन्त है,
ज्ञानी इनमें नहीं भटकता। (22)

काम क्रोध से उत्पन्न वेग,
समर्थ है जो सह सकने में,
देह नाश होने से पहले,
वही योगी सुखी है जग में। (23)

आत्मा में ही क्रियाशील जो,
आत्मा में ही दृष्टि रखता,
आत्मा में ही सुखी सर्वदा,
योगी वह मुक्ति पा जाता। (24)

मुक्त है जो द्वैत भाव से,
जीवों के कल्याण में रत,
चित्त जिनका आत्म परायण,
पाते हैं वे मुक्ति का पथ। (25)

मुक्त है जो काम क्रोध से,
वश में कर चुके चित्त को,
आत्म तत्त्व ज्ञाता वे सन्त,
पा जाते हैं परम गति को। (26)

कर समान प्राण अपान को,
मगन हो भृकुटि मध्य ध्यान में,
हो जाते जीवन मुक्त योगी वे,
चित्त, इन्द्रियां, बुद्धि कर वश में। (27—28)

सब जीवों के निःस्वार्थ प्रेमी,
जानते मुझे परमेश्वर सबका,
शान्ति लाभ करते वे ऋषिजन,
जान भोक्ता मुझे यज्ञादि का। (29)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 6

ध्यान योग

कर्म त्याग या अग्नि त्याग से,
नहीं होता कोई सच्चा योगी,
अनासक्त हो जो कर्तव्य करता,
वही सच्चा संन्यासी व योगी। (1)

हो सकता नहीं कोई योगी,
स्वार्थ का किए बिना त्याग,
परतत्त्व से युक्त होने को,
हे अर्जुन, कहते हैं संन्यास। (2)

कर्म ही साधन कहा जाता है,
प्रारम्भिक साधक के लिए,
प्राकृत क्रियाओं का पूर्ण त्याग,
हेतु है योगारूढ़ के लिए। (3)

सकाम कर्म व इन्द्रिय तृप्ति में,
पुनः नहीं जो प्रवृत्त होते,
योगारूढ़ उन्हें कहा जाता जो,
नहीं वासना में प्रवृत्त होते। (4)

करें उद्धार आत्मा का अपनी,
सब जीव स्वयं मन के द्वारा,
मन ही मित्र है बद्धजीव का,
मन ही लेकिन शत्रु उसका। (5)

कर लिया मन जिसने वश में,
मन उसका सर्वश्रेष्ठ बन्धु है,
लेकिन मन नहीं जिसका वश में,
मन ही उसका परम शत्रु है। (6)

सुख–दुःख, मान–अपमान,
गर्मी–सर्दी है समान जिसको,
जीत लिया जिसने मन अपना,
नित्य प्राप्त परमात्मा उसको। (7)

रखते हैं योगी सम भाव,
मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में,
ज्ञान विज्ञान से तृप्त योगी,
सदा स्थित वे ब्रह्म तत्त्व में। (8)

भेद नहीं जिसे मित्र–शत्रु में,
ना ही भेद साधु–असाधु में,
पुरुष जितेन्द्रिय वह उत्तम,
रखता समबुद्धि जो सब में। (9)

नित्य एकाग्र भक्ति भाव में,
योगी वह निर्जन में बस कर,
मुक्त कामनाओं व संग्रह से,
सदा सचेत एकाकी रह कर।

एकाग्र हो, पवित्र भूमि पर,
दृढ़ आसन को स्थापित कर,
करे अभ्यास हृदय शुद्धि हेतु,
इन्द्रियां अपनी वश में कर। (10–12)

शांत, संयमित, निर्भय मन से,
ब्रह्मचर्य व्रत में होकर स्थित,
धारण कर मुझको हृदय में,
मेरे परायण हो मुझमें स्थित। (13–14)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

तन, मन और क्रियाओं के,
संयम का कर निरन्तर अभ्यास,
भव रोग समाप्त होने पर,
योगी वह आ जाता मेरे पास। (15)

अनुचित बहुत अधिक या कम,
खाना या सोना योगी को,
यथायोग्य आहार विहार,
देता है मुक्ति योगी को। (16–17)

कर अभ्यास से चित्त वश में,
दिव्य तत्त्व में स्थित हो जाता,
नित्य एकाग्र ध्यान में हो कर,
योगी फिर डिगने नहीं पाता। (18–19)

संयमित जब हो जाता चित्त,
होता आत्म स्वरूप का दर्शन,
यह आनन्दमयी स्थिति पा योगी,
आत्म स्वरूप में करता रमण। (20–21)

परम सुख यह प्राप्त होने पर,
दुख नहीं करता चलायमान,
मिलती मुक्ति दुखों से जिससे,
उसे योग रूपी समाधि जान। (22–23)

त्याग सम्पूर्ण कामनाएं योगी,
मन द्वारा इन्द्रियां वश में करे,
पूर्ण दृढ़ता व श्रद्धा सहित वह,
निश्चय पूर्वक योगाभ्यास करे। (24)

धीरे–धीरे विश्वास पूर्वक,
बुद्धि द्वारा हो समाधि में स्थित,
कुछ भी चिन्तन न करे,
वह आत्म स्वरूप के अतिरिक्त। (25)

चंचल और अस्थिर मन,
जहां जहां विषयों में भटके,
वहां वहां से खींच इसे,
फिर करे आत्मा के वश में। (26)

एकाग्र मन जो मुझमें करता,
योगी परम सुख वह पाता,
रजोगुण व पाप से निवृत्त हो,
शान्तचित्त वह मुक्ति पाता। (27)

योगाभ्यास में तत्पर योगी,
सब पापों से मुक्ति पाता,
परतत्त्व का सान्निध्य पाकर,
सर्वोपरि सुख वह पाता। (28)

स्थित देखता सब प्राणी मुझमें,
सब में दर्शन मेरे करता,
सदा प्राप्त रहता मैं उसको,
ना ओझल वह मुझसे होता। (29–30)

प्राणी मात्र के हृदय में स्थित,
जान मुझे जो भजन करता,
सेवा करता सभी जीवों की,
सदा मुझमें वह स्थित रहता। (31)

परम श्रेष्ठ वह योगी जो,
सबको देखता आत्मा समान,
सुख या दुख प्राप्ति में जो,
सब जीवों को देखता समान। (32)

अर्जुन बोला हे मधुसूदन, यह
आप द्वारा वर्णित योग पद्धति,
मन के चंचल होने के कारण,
मुझ को स्थायी नहीं दिखती। (33)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

हे कृष्ण, यह मन चंचल है,
उद्वेगकारक, बलवान, दुराग्रही,
कठिन इसे वश में कर लेना,
वायु वश में कर लेने से भी। (34)

बोले भगवन, हे कुन्तीनन्दन,
माना मुश्किल मन का रुकना,
पर अभ्यास और वैराग्य से,
संभव है मन वश में करना। (35)

असंभव है स्वरूप साक्षात्कार,
असंयत मन वालों के लिए,
प्रयत्न द्वारा लेकिन संभव है,
विजित मन वालों के लिए। (36)

अर्जुन ने पूछा, हे माधव,
क्या गति पाता वह योगी,
विषयों में आसक्ति के वश,
विचलित हो जाता जो योगी। (37)

योग के परमोच्च लक्ष्य को,
प्राप्त नहीं जो कर पाता,
छिन्न मेघ की भांति ही क्या,
योगी नष्ट वह हो जाता। (38)

हे कृष्ण, केवल आपके सिवाय,
नहीं है संभव अन्य के लिए,
आप ही प्रभु पूर्ण समर्थ है,
कृपा कर संशय दूर कीजिए। (39)

बोले भगवन, हे अर्जुन,
सदाचारी का अमंगल नहीं होता,
शुभ कर्मों में रत योगी,
किसी लोक में नष्ट नहीं होता। (40)

योग भ्रष्ट योगी चिर काल,
सुख भोग पुण्य लोकों में,
पुनः जन्म लेता फिर वह,
सदाचारी व धनी घर में। (41)

दीर्घकाल तक योगाभ्यास कर,
योगी भ्रष्ट जो हो जाता,
अति दुर्लभ इस जग मे वह,
विद्वानो के घर जन्म पाता। (42)

उस देह मे वह जन्मान्तर के,
बुद्धियोग को फिर पा जाता,
इस प्रकार पुनः योगयुक्त हो,
पूर्ण सिद्धि हेतु साधन करता। (43)

पूर्व जन्म के बुद्धियोग से,
पुनः आकृष्ट वह हो जाता,
इस प्रकार अनेक जन्मो में,
परम लक्ष्य वह पा जाता। (44–45)

तपस्वी, ज्ञानी, सकाम कर्मी,
इस सबसे श्रेष्ठ है योगी,
उनमे भी जो भक्ति परायण,
परम श्रेष्ठ है वह योगी। (46–47)

अध्याय – 7

ज्ञान विज्ञान योग

भगवन बोले भक्ति भाव से,
लगा मुझमे अपने मन को,
योगाभ्यास द्वारा फिर जैसे,
जानेगा मुझे सुन उसको। (1)

तेरे लिए तत्त्व ज्ञान कहूंगा,
विज्ञान सहित पूर्ण रूप से,
नहीं शेष रहता फिर कुछ,
जानने योग्य जान जिसे। (2)

यत्न करता है संसिद्धि का,
कोई एक हजारो में से,
जान पाता पर मुझे तत्त्व से,
बिरला ही कोई उनमें से। (3)

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,
आकाश, मन, बुद्धि, अंहकार,
अपरा प्रकृति आठ भागो में,
विभाजित है यह इस प्रकार। (4)

जड़ से अलग, जीव रूपी,
मेरी एक परा प्रकृति भी है,
इन दोनो से होता उत्पन्न,
इस जग में जो कुछ भी है। (5)

इस परा प्रकृति द्वारा ही,
धारण यह सारा जग है,
माला में गुंथित मणियो सा,
यह ब्रह्माण्ड मुझमें लय है। (6)

इस सम्पूर्ण जगत का हूं मैं,
उत्पत्ति और प्रलय रूप,
नहीं श्रेष्ठ अन्य कुछ मुझसे,
मैं ही सबका आश्रय रूप। (7)

जल में रस, आकाश में शब्द,
सूर्य, चन्द्र में प्रभा मैं हूं,
वैदिक मन्त्रो में औंकार और,
मानव मात्र में पोरूष मैं हूं। (8)

मैं ही पृथ्वी में आद्य सौरभ,
और अग्नि में तेज मैं हूं,
मैं ही सब प्राणियो में जीवन,
तपस्वियों में तप मैं हूं। (9)

सब प्राणियो का आदि बीज,
बुद्धिमानो की बुद्धि मैं हूं,
जीवो में धर्म सम्मत काम,
बलवानो का बल मैं हूं। (10–11)

सत्य, रज, तम, सब भाव मुझसे,
मेरी शक्ति से होते अभिव्यक्त,
सब कुछ मुझसे होने पर भी,
माया से अतीत, मैं पूर्ण स्वतंत्र। (12)

इन त्रिगुणों से मोहित संसार,
उनसे परे मुझे नहीं जानता,
दुस्तर मेरी यह त्रिगुणी माया,
शरणागत मेरे ही बच पाता। (13–14)

माया से भ्रमित पापी अज्ञानी,
वे मेरी शरण नहीं लेते,
आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु व ज्ञानी,
ये ही मेरी भक्ति करते। (15–16)

अनन्य भक्ति में सदा तत्पर,
ज्ञानी इन सब में सर्वश्रेष्ठ है,
मैं उसको अत्यंत प्रिय हूं,
वह भी मुझे अतिशय प्रिय है। (17)

उदार हैं यह सभी भक्त,
लेकिन जो है तत्त्व ज्ञानी,
मेरी भक्ति के परायण,
स्थित रहता वह मुझमें ही। (18)

अति दुर्लभ वह ज्ञान योगी,
जो अनेक जन्मान्तरों के बाद,
आता है मेरी शरण में वह,
मुझे वासुदेव सर्वव्यापी जान। (19)

कामनाओं से मोहित हैं जो,
देवताओं की शरण् वे लेते,
अपने स्वभाव के वश होकर,
विधि विधान का पालन करते। (20)

जिस भी देवता की प्राणी,
इच्छा पूजने की करता,
उस की श्रद्धा को स्थिर,
मैं उस देवता में करता। (21)

अराधना कर देवताओं की,
पाते है वे इच्छित भोग,
वास्तव में लेकिन मैं ही,
देता हूं उनको ये भोग। (22)

क्षण भंगुर फल पर मिलता,
उन अल्पज्ञ मनुष्यों को,
देव लोकों को पाते हैं वे,
पर मेरे भक्त पाते मुझको। (23)

अव्यक्त से आकार को प्राप्त,
मुझे बुद्धिहीन मनुष्य मानते,
अविनाशी उत्तम मेरा स्वरूप,
यह स्वरूप वे नहीं जानते। (24)

योगमाया में छिपा रहता हूं,
मुढ़ो को प्रकट नहीं होता,
मुझ अच्युत, अविनाशी को,
यह मोहित जग नहीं जानता। (25)

भूत, वर्तमान और भविष्य,
समान रूपसे मैं हूं जानता,
जानता हूं सब जीवो को भी,
मुझको पर कोई नहीं जानता। (26)

इच्छा, द्वेष से उत्पन्न द्वन्दों से,
जीव जगत में मोहित होते,
लेकिन द्वन्दों से मुक्त पुण्यात्मा,
निष्ठापूर्वक मुझको ही भजते। (27–28)

मुक्ति चाहते जरा मरण से,
मेरे परायण वे भक्ति करते,
तत्त्व अध्यात्म और कर्म का
सम्पूर्ण रूप से वे ही जानते। (29)

परमेश्वर, अधिभूत, अधिदेव, अधियज्ञ,
इस रूप मे जो मुझे जानते,
वे स्थिर चित्त पुरूष मुझको,
अपने अन्तकाल में भी जानते। (30)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 8

अक्षर ब्रह्म योग

ब्रह्म क्या है, क्या है अध्यात्म,
हे पुरूषोत्तम, कृपा कर कहिए,
सृष्टि, कर्म और अधिदेव का भी,
क्या है अन्तर, कृपा कर कहिए। (1)

कैसे हैं यज्ञपुरूष इस शरीर में,
किस अंग के निवासी हैं वे,
कैसे आपको जान सकते हैं,
भक्ति योगी अन्त काल में। (2)

प्राकृत देहों का सृष्टि कार्य,
बोले भगवन, कहलाता है कर्म,
नित्य स्वभाव जिसका अध्यात्म,
जीवात्मा वह कहलाता ब्रह्म। (3)

परिवर्तन शील प्रकृति अधिभूत है,
विराट पुरूष ही अधिदेव है,
जीवों का अन्तर्यामी परमात्मा,
मेरा अंश ही वह अधियज्ञ है। (4)

अन्तकाल में मेरा स्मरण,
करता हुआ जो त्यागता देह,
मेरे स्वभाव को प्राप्त होता
नही इसमे कोई भी संदेह। (5)

जिस भाव का स्मरण कर,
त्यागता है यह जीव देह,
उसी भाव से भावित रहता,
पाता उसको ही निःसंदेह। (6)

इसलिए स्वधर्म कर्म का पालन,
और कर नित्य मेरा स्मरण,
हे अर्जुन, प्राप्त होगा मुझको,
मन, बुद्धि कर मुझमें अर्पण। (7)

अनन्य चित्त से जो निरन्तर,
करता परम पुरूष का चिन्तन,
निश्चय श्री भगवान को पाता,
भक्ति सहित जो करता स्मरण। (8)

सर्वज्ञ, अनादि, अणु से भी सूक्ष्म,
परम पुरूषोत्तम जगत से परे हैं,
सर्वपालक, ईश्वर, सूर्य से तेजोमय,
दिव्य स्वरूप वे प्रकृति से परे हैं। (9)

भ्रकुटी के मध्य कर स्थापित,
अन्त काल मे अपने प्राण को,
भक्ति भाव से युक्त पुरूष वह,
पा जाता है भगवद धाम को। (10)

अविनाशी ओंकार जिसे कहते,
प्रवेश वीतरागी जिस में करते,
सुन उस मुक्ति पथ का वर्णन,
ब्रह्मचर्य जिसे पाने को रखते। (11)

सभी इन्द्रियां हटा विषयों से,
स्थिर कर के चित्त हृदय में,
प्राण स्थापित मस्तक में कर,
स्थित जो होता मेरे ध्यान में। (12)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

इस योगधारणा में स्थित हो,
अक्षर ब्रह्म औंकार उच्चार,
त्यागता देह मुझे स्मरण कर,
निश्चित जान उसका उद्धार। (13)

करता है जो मेरा स्मरण,
नित्य निरन्तर अनन्य भाव से,
सदा सुलभ उसके लिए मैं,
जो परायण है मेरी भक्ति के। (14)

मुझको प्राप्त मेरे भक्तजन,
परम संसिद्धि को पा जाते,
इस दुखी अनित्य जगत में,
फिर पुनर्जन्म वे नहीं पाते। (15)

प्राकृत जगत में सभी लोक,
दुखदायी और क्लेश पूर्ण हैं,
नीचे से लेकर ब्रह्मलोक तक,
जन्म–मृत्यु से वे परिपूर्ण हैं। (16)

एक हजार चतुर्युग वाले,
ब्रह्मा के दिन–रात होते हैं,
जीव समूह प्रकटते दिन में,
रात्रि में लय हो जाते हैं। (17–18)

जीव समुदाय प्रकट हो–होकर,
रात्रि आने पर लय हो जाता,
लेकिन कर्म के आधीन हुआ फिर,
दिन आने पर व्यक्त हो जाता। (19)

इस जड़ प्रकृति से श्रेष्ठ पर,
एक परा प्रकृति और भी है,
नहीं नष्ट होती जो प्रलय में,
सदा सनातन और अविनाशी है। (20)

परम गति कहते हैं जिसको,
अव्यक्त, अक्षर वह परम धाम,
पा कर जिसे ना लौटना पड़ता,
वही है मेरा दिव्य परम धाम। (21)

सभी जीव जिसमें स्थित हैं,
सब कुछ है जिनसे परिव्याप्त,
केवल अनन्य भक्ति द्वारा ही,
परम पुरूष वे हो सकते प्राप्त। (22)

हे अर्जुन, अब तेरे लिए मैं,
करूंगा उन कालों का वर्णन,
प्रयाण जिस में करने पर,
निर्भर करता भव आवागमन। (23)

अग्नि, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण का
जिस पथ में है अभिमानी देवता,
उस पथ में देह को त्याग कर,
ब्रह्म को पा जाता है ब्रह्मवेत्ता। (24)

धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन का,
जिस पथ में है अभिमानी देवता,
उस पथ में चंद्र लोक की ज्योति पा,
योगी फिर जग में पुनः लौटता। (25)

शुक्ल और कृष्ण दो ही मार्ग,
विदित वेदो में प्रयाण करने के,
मोक्ष पाते हैं शुक्ल गति से,
कृष्ण गति से आते लौट के। (26)

भक्त कभी मोहित नहीं होता,
इन मार्गो का तत्त्व जान कर,
इसलिए, हे पृथापुत्र अर्जुन,
भक्ति कर तू नित्य निरन्तर। (27)

यज्ञ आदि के पुण्य फलो का,
भक्त उल्लघंन कर जाता,
जानकर इस ज्ञान को वह,
मेरा अनादि धाम पा जाता। (28)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

अध्याय – 9

राजविद्याराजगुह्ययोग

भगवन बोले इस गोपनीय,
ज्ञान को विज्ञान सहित सुन,
जिसे जान जग के क्लेशों से,
मुक्त हो जाएगा, हे अर्जुन। (1)

यह ज्ञान विद्याओं का राजा,
अति गोपनीय परम पावन,
प्रत्यक्ष फल कराता अनुभव,
धर्ममय, सनातन, अति सुगम। (2)

श्रद्धाहीन जो भक्ति योग में,
कभी ना मुझको पा सकते,
मृत्यु रूप इस जग में ही वे,
बारम्बार जन्म–मृत्यु पाते। (3)

यह सारा संसार व्याप्त है,
इन्द्रियातीत मेरे स्वरूप से,
समस्त प्राणी मुझमें स्थित हैं,
नही स्थित पर मैं उन में। (4)

देख मेरे इस योगेश्वर्य को,
नही यह सृष्टि मुझमें स्थित,
सृष्टि कारक जीवों का भर्ता,
नहीं आत्मा मेरा उनमें स्थित। (5)

जैसे यह विचरण शील वायु,
स्थित रहता नित्य गगन में,
वैसे ही सम्पूर्ण प्राणियों को,
हे अर्जुन, जान स्थित मुझमें। (6)

लय हो जाती मेरी प्रकृति में,
सम्पूर्ण सृष्टि कल्पान्त होने पर,
रचता हूं फिर अपनी शक्ति से,
यह सृष्टि कल्पारम्भ होने पर। (7)

बार–बार प्रकट होती है,
यह सृष्टि मेरे संकल्प से,
मेरे ही आधीन सृष्टि यह,
नष्ट होती मेरे संकल्प से। (8)

नही बंध सकता लेकिन मैं,
इन सब कर्मो के बन्धन से,
उदासीनवत स्थित हूं मैं,
कर्मो में अनासक्त भाव से। (9)

रचती है समस्त चराचर,
यह माया शक्ति मेरे वश में,
इस कारण से प्राकृत सृष्टि,
क्रियाशील है संहार–सृजन में। (10)

नराकार में अवतरित होने पर,
मूर्ख मेरा करते उपहास,
लेकिन मुझ परमेश्वर का वे,
नही जानते दिव्य स्वभाव। (11)

इस प्रकार मोहित हैं जो,
आसुरी स्वभाव धारण करते,
इनका मनोरथ व ज्ञान सभी,
निःसन्देह निष्फल हो रहते। (12)

लेकिन मोहमुक्त महात्मा मेरी,
दिव्य प्रकृति के आश्रित होकर,
सेवा करते है अविचल भाव से,
सृष्टि का आदिकारण जान कर। (13)

नित्य मेरा वे भजन करते,
निश्चय पूर्वक पूर्ण यत्न से,
सदा तत्पर रह कर करते,
आराधना वे भक्ति भाव से। (14)

मुझ परमेश्वर को वे उपासते,
जो तत्पर ज्ञान के अनुशीलन में,
अद्वय रूप में, विविध रूपो में,
अनेक प्रकार से, विश्व रूप में। (15)

मै ही हूं सब कर्म काण्ड,
मै ही यज्ञ और तर्पण हूं,
घी, अग्नि और आहुति भी,
मै ही औषधि और मन्त्र हूं। (16)

इस जगत का माता–पिता,
पितामह और पोषक हूं मैं,
परम पावन औंकार और,
ऋक, साम, यजुर्वेद हूं मैं। (17)

ज्ञानी, साक्षी, ईश्वर, पालनकर्ता,
परमधाम आधार हूं सबका,
सृष्टि, प्रलय, अविनाशी बीज,
जीवों का सुहृद शरण दाता। (18)

मैं ही इस जग को तपाता,
जल को सोख मेंह बरसाता,
सत–असत, अमृत–मृत्यु,
मैं ही हूं जग का अधिष्ठाता। (19)

सकाम कर्मों में जो रत हैं,
वे स्वर्गादि लोको को पाते,
पर यथार्थ में वे यज्ञों द्वारा,
अप्रत्यक्ष में मुझको ही पूजते। (20)

पुण्य क्षीण हो जाने पर वे,
मृत्यु लोक में फिर गिरते,
केवल क्षणभंगुर सुख पाकर,
जन्म मृत्यु वे पाते रहते। (21)

अनन्य मन से जो लेकिन,
मेरा दिव्य रुप चिन्तन करते,
योगक्षेम वहन करता मैं उनका,
भक्ति भाव से जो मुझे भजते। (22)

पूजते जो अन्य देवताओं को,
वास्तव में वे मुझे ही पूजते,
अविधिपूर्वक पर उनकी पूजा,
युक्त नही जो यथार्थ ज्ञान से। (23)

मैं ही हूं सब यज्ञों का,
एक मात्र स्वामी और भोक्ता,
जो नही जानते मुझे तत्त्व से,
जन्म–मरण उनका होता। (24)

जो जिस भाव से पूजा करता,
वैसा ही वह फल पाता,
देवता, पितर, भूत या मुझको,
जिसे पूजता उसको पाता। (25)

भक्ति भाव के साथ भक्त,
करते मुझको जो भी अर्पण,
पत्र, पुष्प, फल, जल आदि,
करता मैं प्रेम सहित ग्रहण। (26)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

इसलिए सुन हे कुन्तीनन्दन,
जप, तप और दान, हवन,
जो तू करता, जो भी खाता,
वह सब कर मेरे अर्पण। (27)

इस प्रकार तू छूट जाएगा,
शुभ–अशुभ सब कर्मफलों से,
मुक्त हो मुझको ही पाएगा,
युक्त हो इस संन्यास योग से। (28)

समभाव मेरा सब जीवों में,
कोई प्रिय न द्वेष किसी से,
लेकिन भक्ति जो मेरी करते,
वे मुझमे स्थित, मैं उनमें। (29)

अतिशय दुराचारी भी यदि,
अनन्य भाव से मुझे पूजता,
साधु ही वह मानने योग्य है,
क्योंकि यथार्थ है उसकी निष्ठा। (30)

अतिशीघ्र ही धर्म परायण हो,
परम शान्ति को वह पा जाता,
निश्चय पूर्वक घोषित कर, अर्जुन,
मेरे भक्त का नहीं नाश होता। (31)

निःसंदेह पाप योनि वाले भी,
अनन्य भाव से शरणागत हो,
स्त्री, वैश्य या शूद्र हों चाहे,
प्राप्त करते वे परम गति को। (32)

ब्राह्मण, भक्त और राजर्षि फिर,
क्यों न हों भक्ति के परायण,
मुक्ति हेतु इस दुखलोक से,
हे अर्जुन, हो भक्ति के परायण। (33)

अनन्य भाव से नित्य निरन्तर,
मन से मेरा ही चिन्तन कर,
अतिशय प्रेम सहित मुझको तू,
हे अर्जुन, नित्य नमन कर।

मेरा भक्त हो मेरे परायण,
सदा मेरा ही पूजन कर,
प्राप्त होगा मुझको ही तू,
अर्जुन मेरी शरण ग्रहण कर। (34)

अध्याय – 10

विभूति योग

केशव बोले, हे सखा अर्जुन,
मेरे परम वचन फिर से सुन,
कहता हूं तेरे कल्याण हेतु,
पाएगा परमानन्द जिसे सुन। (1)

मेरे अविर्भाव को नही जानते,
महर्षि हों या हों वे देवता,
क्योंकि मै आदि कारण हूं,
सब प्रकार से उन सबका। (2)

अज, अनादि, लोक महेश्वर,
इस प्रकार जो मुझे जानता,
मनुष्यों में परम ज्ञानी वह,
सब पापो से मुक्त हो जाता। (3)

बुद्धि, ज्ञान, संशय से मुक्ति,
क्षमा, सत्य, इन्द्रिय संयम,
सुख–दुख और जन्म–मरण,
भय–अभय, मन का संयम। (4)

अहिंसा, समता, संतोष, तप,
दान, यश, अपयश आदि,
प्रकट होते सब जीवों में,
ये विविध भाव मुझसे ही। (5)

सात महर्षि, चौदह मनु,
इनसे पूर्व सनक आदि,
उत्पन्न हुए मेरे संकल्प से,
जिनकी है यह प्रजा सभी। (6)

मेरे ऐश्वर्य व योग शक्ति को,
तत्त्व से जो कोई जानते,
नही इसमे कोई संदेह वह,
मेरी अनन्य भक्ति करते। (7)

मुझसे ही उत्पन्न होकर,
सब मुझ से ही चेष्टा करते,
बुद्धिमान इस तत्त्व को जान,
श्रद्धा से मेरी भक्ति करते। (8)

मेरे भक्त निरन्तर मेरा ही,
चिन्तन और स्मरण करते,
मेरी महिमा का कर बखान,
वे चिन्मय रसपान करते। (9)

भक्ति परायण भक्तों को,
प्रेम सहित जो मुझे भजते,
देता हूं मैं दुर्लभ बुद्धियोग,
जिससे वे मुझको पा जाते। (10)

हृदय में हो स्थित भक्तों के,
मैं उन पर अनुग्रह करता हूं,
अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार,
ज्ञान दीपक द्वारा हर लेता हूं। (11)

अर्जुन बोला, हे प्रभु आप हैं,
परमब्रह्म, परमधाम, परम पावन,
अजन्मा, आदिदेव, सनातन पुरूष,
ऋषि आपका यों करते वर्णन। (12–13)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

कहा आपने जो मेरे प्रति,
सत्य है वह पूर्ण रूप से,
निःसंदेह नहीं जानते आपको,
देव या दानव, स्वरूप से। (14)

अपनी शक्ति से अपने को,
जानते हैं आप स्वयं ही,
हे परमेश्वर, हे देव देव।
हे पुरूषोत्तम, जग के स्वामी। (15)

कृपा कर कीजिए वर्णन,
आपकी सब विभूतियां दिव्य,
जिनसे आप सम्पूर्ण लोकों को,
करके व्याप्त हो रहे स्थित। (16)

हे योगेश्वर, किस प्रकार मैं,
करूं आपका चिन्तन, मनन,
किन रूपों में करना चाहिए,
हे प्रभु, मुझे आपका स्मरण। (17)

अपने ऐश्वर्य और योग शक्ति को,
हे जनार्दन, कहिए विस्तार से,
तृप्त नही होता सुन–सुन कर,
अमृत मयी ये वचन आपके। (18)

तेरे लिए कहता हूं अर्जुन,
अपनी विभूतियां मुख्य रूप से,
बोले भगवन, क्योंकि अर्जुन,
अन्त नहीं है ऐश्वर्य का मेरे। (19)

हे गुड़ाकेश, सब जीवों के,
हृदय में स्थित आत्मा हूं मैं,
मैं ही जीव मात्र का आदि,
मैं ही मध्य हूं, अन्त हूं मैं। (20)

अदिति के पुत्रो में विष्णु,
ज्योतियों में सूर्य हूं मैं,
मरूदगणों में हूं मरीचि,
और नक्षत्रों में चन्द्र हूं मैं। (21)

वेदों में मैं सामवेद हूं,
इन्द्रदेव हूं देवों में,
इन्द्रियों में मैं मन हूं,
जीवन शक्ति जीवों में। (22)

रुद्रों में मैं महारुद्र हूं,
कुबेर यक्ष–राक्षसों में मैं,
वसुओं में मैं अग्नि हूं,
मेरु पर्वत शिखरों में मैं। (23)

सब पुरोहितों में प्रधान,
देव गुरु बृहस्पति हूं मैं,
सेना नायकों मे कार्तिकेय,
जलाशयों में समुद्र हूं मैं। (24)

महर्षियों में भृगु महर्षि,
औंकार हूं वाणी में मैं,
यज्ञों में मैं हूं जपयज्ञ,
हिमगिरि स्थावरों में मैं। (25)

वृक्षों में पीपल का वृक्ष,
देवर्षियों में नारद हूं मैं,
गन्धर्वों में चित्ररथ और,
सिद्धों में कपिलमुनि हूं मैं। (26)

अश्वों में मैं उच्चैश्रवा हूं,
ऐरावत हूं गजराजों में,
मुनष्यों में मैं नराधिपति हूं,
वज्र हूं मैं सब शस्त्रों में। (27)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65

गायों में मैं हूं कामधेनु,
सर्पों में मैं वासुकि हूं,
सन्तान हेतु हे अर्जुन,
कामदेव भी मैं ही हूं। (28)

जलचरों मे वरूण देवता,
नागों में शेषनाग हूं मैं,
पितरों में अयर्मा पितर,
शासकों में यमराज हूं मैं। (29)

दैत्यों में मैं प्रहलाद,
दमनकारियों में काल हूं मैं,
पक्षियों में मैं गरुड़राज,
पशुओं में वनराज हूं मैं। (30)

पवित्र करने वालो में वायु,
शस्त्रधारियों में राम हूं मैं,
जलजीवों में मगरमच्छ हूं,
नदियों में भागीरथी हूं मैं। (31)

सृष्टि का आदि, मध्य, अन्त,
विद्याओं में अध्यात्म विद्या हूं मैं,
विवाद करने वालों में, हे अर्जून,
तत्त्व का निर्णायक वाद हूं मैं। (32)

समासो में द्वन्द्व समास,
अक्षरों में आकार हूं मैं,
मैं ही हूं अविनाशी काल,
ब्रह्मा प्रजापालको में मैं। (33)

मृत्यु उत्पत्ति का कारण,
स्त्रियों में ख्याति हूं मैं,
मधुर वाणाी, स्मृति, बुद्धि,
निष्ठा और क्षमा हूं मैं। (34)

मन्त्रों में बृहत्साम मन्त्र,
छन्दों में गायत्री हूं मैं,
ऋतुओं में मैं वसन्त ऋतु,
महीनों में मार्गशीर्ष हूं मैं। (35)

छल करने वालों में जुआं,
प्रभावशलियों का प्रभाव हूं मैं,
विजय और साहस भी मैं हूं,
और बलवानों का बल हूं मैं। (36)

वृष्णि वंशियों में वासुदेव,
पाण्डवों में अर्जुन हूं मैं,
मुनियों में मैं वेदव्यास,
कवियों में शुक्राचार्य हूं मैं। (37)

दमन करने वालों का दण्ड,
विजेताओं की नीति हूं मैं,
गोपनीय भावों में मौन,
और ज्ञानियों का ज्ञान हूं मैं। (38)

हे अर्जून, और अधिक क्या,
सृष्टि का आदि बीज हूं मैं,
अनन्त है मेरी विभूतियां,
ऐश्रवर्य का अक्षय भडार हूं मैं। (39–40)

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ है,
ऐश्रवर्य और कांति से युक्त,
हे अर्जुन, उस–उस को जान,
मेरे ही तेज अंश से युक्त। (41)

अथवा क्या प्रयोजन तुझको,
बहुत जानने से, हे कुन्तीनन्दन,
व्याप्त हो रहा हूं इस जग में,
अंश मात्र से इसे कर धारण। (42)

Pentium (2) D:\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-1.p65